**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 385-388**

# भारत में जनजातीय विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन

**डॉ0 सुनीता बघेल**

सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, मध्य प्रदेश, भारत।

**सारांश**

भारत विविधताओं का देश है। यह सच्चे अर्थो में समुदायों का एक समुदाय है। इन समुदायों में से एक है–जनजातीय समुदाय जिनकी अपनी जीवन शैली है। इनके विशिष्ट रीति–रिवाज एवं संस्कृति की अपनी पहचान है। ये लोग सदियों से अलगाव की स्थितियों में राष्ट्र की मुख्यधारा से पृथक रहे हैं। इन अलगाव की स्थितियों ने उन्हें असमानता, शोषण एवं निम्न स्थिति का जीवन जीने पर विवष किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जनजातीय समुदायों को राजनीतिक सहभागिता का अवसर प्रदान करने के लिए तीन प्रकार की व्यवस्थाओं को मुख्य रूप से अपनाया गया है। प्रथम, जनजातीय समुदाय की सामाजिक–आर्थिक उन्नति के लिए शैक्षणिक कल्याणकारी योजनायें, द्वितीय, सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था, इस नीति के अधीन जनजातीय समुदाय के सदस्यों के लिए सभी प्रकार की नौकरियों में स्थान आरक्षित किए गए हैं तथा पदोन्नति की विशेष सुविधा भी प्रदान की गयी है, तृतीय राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था।

**मुल शब्द:** स्वतंत्रता पूर्व जनजातीय विकास, स्वतन्त्रता पश्चात् जनजातीय विकास, संवैधानिक प्रावधान, विकासात्मक गतिविधियाँ।

## प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही जनजातीय विकास का मुद्दा गहन विवाद एवं चिन्तन का विषय रहा है। 19वीं शताब्दी के अन्त तक समाज वैज्ञानिकों का मानना था कि जनजातीय विकास हेतु विशेष मानवीय प्रयत्नों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि समाज का निरन्तर विकास हो रहा है तथा वह एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ रहा है। अतः जनजातियों का विकास स्वतः कालक्रमानुसार होगा। इस प्रकार उद्विकासवादी सिद्धान्त के प्रवर्तकों ने जनजातियों को 'अकेले छोड़ देने' की नीति का समर्थन किया। आगे चलकर अलग–अलग रखने की नीति को डॉ. एम. सी. राय, डॉ. डी. एन. मजूमदार एवं वेरियर एल्विन ने और भी बल प्रदान किया (त्रिपाठी, 1973: 8–13)।

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में एल्विन ने अपनी पुस्तक "दि लॉज ऑफ नर्व" में स्पष्ट रूप से तर्क दिया कि जनजाति जितना अधिक शहर की ओर गैर–जातीय समुदायों के निकट आएगा, उतना ही वह अपनी पहचान को संकट में डाल देगा। यह सम्पर्क उसे बिगाड़ देगा, वह बुरी आदतों की लत में फँस जाएगा और उसका सुखी जीवन विपन्नता में बदल जाएगा। एल्विन का आग्रह था कि सभ्य समाज अर्थात् गैर –जनजातीय समाज से पृथक रहकर ही जनजातीय समाज अपनी प्राकृतिक अवस्था में रह सकता है (राकेष, 1995: 8–12)।

इस प्रकार जनजातीय समस्याओं के निराकरण एवं जनजाति कल्याण के लिए पृथक्करण की नीति का कुछ मानवशास्त्रियों, प्रशासकों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समर्थन किया। ये लोग जनजातीय जीवन की शान्ति, सौहार्द एवं सामंजस्य को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते थे एवं उनको स्वयं अपने ढंग से विकसित होने का अवसर प्रदान करने के पक्ष में थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद धर्मनिरपेक्ष एवं समानतावादी समाज की स्थापना के उद्देश्य से संविधान का निर्माण किया गया तथा पृथक्करण की नीति को त्याग कर आत्मसात्मीकरण की नीति को अपनाया गया। वेरियर ऐल्विन ने स्वयं अपने पूर्व विचारों को परिवर्तित करते हुए अपनी पुस्तक "फिलॉसफी फॉर नेफा" (1956) में कहा कि पृथक्ककरण की नीति छोटे–छोटे जनजातीय समुदाय पर ही लागू की जा सकती है न कि सम्पूर्ण जनजातीय समाज पर मैं अथवा कोई भी दूसरा मानवशास्त्री स्वतन्त्रता के बाद इस प्रकार की नीति को अपनाने का सुझाव नहीं दे सकता। आधुनिक युग में पृथक्करण सम्भव नहीं है और यदि सम्भव भी है तो वह वांछनीय नहीं है (त्रिपाठी, 1995: 9–12)।

आत्मसात्मीकरण की नीति के प्रमुख उद्घोषक डॉ. घुरिये ने अपनी पुस्तक "द शेड्यूल्ड ट्राइब्स" (1967) में कहा कि ''जनजातियों को आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में लाने की आवश्यकता है। इससे उन्हें अपनी निम्न स्थिति और दयनीय दशा का ज्ञान होगा एवं उसे सुधारने की प्रेरणा मिलेगी।'' ए. वी. ठक्कर जो ठक्कर बापा के नाम से जाने जाते हैं, ने सुझाव दिया कि जनजातियों की समस्याओं का समाधान जनजातीय क्षेत्रों के पूर्णरूपेण अथवा आंशिक रूप से देश के अन्य भागों से अलग कर देने से नहीं हो सकता। वस्तुतः जनजातियों को देश के सभ्य समुदायों का एक अंश बनाया जाना चाहिए, पर इसका उद्देश्य किसी धर्म विशेष के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करना नहीं होना चाहिए।

आगे चलकर एकीकरण की नीति का समर्थन करते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि जनजातीय लोग और जनजातीय संस्कृति बिल्कुल निकृष्ट नहीं है। कुछ अपवादों को छोड़कर जनजातीय जीवन आधुनिक जीवन की अपेक्षा अधिक अच्छा है। हम जनजातियों से अनुशासनप्रियता, सहयोग एवं सहकारिता की भावना, प्रजातांत्रिक ढंग से कार्य करने की भावना, मित्रता एवं एकता जैसे आदि अनेक गुणों को सीख सकते हैं। इसके साथ ही, जनजातीय विकास के सम्बन्ध में नेहरू ने पाँच सिद्धान्त दिए जिन्हें पंचशील के नाम से जाना जाता है। ये पाँच सिद्धान्त हैं।

1. लोगों को उनकी अन्तर्निहित क्षमताओं के अनुरूप विकसित होने देना चाहिए तथा उन पर हमें किसी भी विचार को थोपने की प्रवृत्ति को टालना चाहिए। हमें हर तरीके से उनकी कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहित करने का प्रयास करना चाहिए।
2. जनजातीय समुदाय के भूमि एवं वन सम्बन्धी अधिकारों का सम्मान किया जाना चाहिए।
3. प्रशासन तथा विकास कार्यों के संचालन में उन्हीं लोगों की भागीदारी को बढ़ाना चाहिए।
4. इन क्षेत्रों में न तो अति प्रशासन व्यवस्था पनपने देनी चाहिए तथा न ही अनेक प्रकार की योजनाओं के कुचक्र में उन्हें

उलझाना चाहिए तथा अन्त में

5. हमें अपने विकास प्रयासों के परिणामों का मूल्यांकन मात्र समंकों या खर्च की गई धनराशि के आधार पर नहीं करना चाहिए। वास्तविक सफलताओं को जमीनी स्तर पर देखा जाना चाहिए (पालीवाल, 2000: 1–9)।

स्पष्ट है कि जनजातीय विकास के पंचशील सिद्धान्त विकास के स्थायी एवं मार्गदर्शी सिद्धान्त है और आज भी जनजाति विकासात्मक योजनाओं को लागू करते समय इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखने की सख्त आवश्यकता है।

आगे के वर्षों में कई विद्वानों शिलू आवों, यू. एन. ढेबर, एस. सी. दुबे, रेणुका राय तथा बी.डी. शर्मा ने एकीकरण एवं आत्मसात्मीकरण की नीति का समर्थन किया एवं जनजातीय विकास हेतु कई सुझाव प्रेषित किए। जनजातीय विकास के इतिहास को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसे दो भागों–स्वतन्त्रता पूर्व जनजातीय विकास एवं स्वतन्त्रता बाद जनजातीय विकास में विभाजित किया जा सकता है।

## स्वतंत्रता पूर्व जनजातीय विकास

भारत में जनजातीय विकास के प्रारम्भ का श्रेय अंग्रेजों को दिया जाता है। प्रारम्भ में अंग्रेज सरकार की यह नीति थी कि इन लोगों को अलग–अलग रखा जाए और जब अशांति या विद्रोह की संभावना हो तो समयानुकूल कानून और न्याय की व्यवस्था की जाए। जनजातियों के प्रति अंग्रेज सरकार की यह सोच सन् 1600 से 1750 तक यथावत बनी रही, किन्तु करीब डेढ़ सौ वर्षों के बाद जब अंग्रेजों की नजरें जनजातीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली अपार प्राकृतिक वन सम्पदा, उपजाऊ भूमि तथा खनिज संसाधनों पर पड़ी तो वे अपनी अलगाव की नीति को कायम नहीं रख पाये और कई ऐसी नीतियाँ और कानून बनाए जिसके कारण जनजाति क्षेत्रों की शान्ति व्यवस्था प्रभावित हुई। सर्वप्रथम ब्रिटिश शासन ने कर वसूलने के लिए जमींदारों को नियुक्त किया। करों को तय करना तथा वसूलना इन्हीं जमींदारों की जिम्मेदारी थी। जो जनजाति कर देने में असमर्थ होते थे उनकी भूमि छीन ली जाती थी। भूमि हस्तांतरण की प्रतिक्रिया स्वरूप जनजाति एवं गैर–जनजाति के बीच कई संघर्ष, विद्रोह एवं आन्दोलन हुए। यद्यपि इन आन्दोलनों को सैन्य बलों द्वारा शान्त कर दिया गया, किन्तु ब्रिटिश सरकार को मजबूरन जनजाति के विकास की ओर ध्यान देना पड़ा ताकि भविष्य में इस प्रकार के विद्रोह न हों। जनजातीय विकास हेतु ब्रिटिशकाल में भी अनेक अधिनियम बनाये गये एवं विकास कि पहल की गई, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–क्लिवलैण्ड अधिनियम, बंगाल अधिनियम 1833, अधिनियम 1855, अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम 1874, छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908, भारत सरकार अधिनियम 1919, भारत सरकार अधिनियम 1935 आदि।

इस प्रकार स्वतन्त्रता पूर्व जनजातीय विकास की दिशा में अंग्रेजों द्वारा किए गए ये महत्वपूर्ण प्रयास रहे, किन्तु स्वार्थों पर आधारित होने के कारण इन प्रयासों की कोई ठोस उपलब्धि नहीं रही। ये प्रयास जनजाति क्षेत्रों में मात्र शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने तक ही सीमित रहे।

## स्वतन्त्रता पश्चात् जनजातीय विकास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने जनजाति विकास की ओर प्राथमिकता के आधार पर कार्य करने की नीति अपनाई। संविधान निर्मात्री सभा ने अपने उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए कहा कि कमजोर व पिछड़े वर्गों को विकास के विशेष अवसर प्रदान किए जाए ताकि ये वर्ग देश की मुख्यधारा में अपने आपको समाहित कर सकें तथा इनकी जीवन पद्धति कम से कम औसत ग्रामीण स्तर तक पहुँच जाए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जनजातीय विकास हेतु देश में किए गए प्रयासों को अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. रक्षात्मक व्यवस्था
2. प्रशासनिक व्यवस्था
3. विकासात्मक गतिविधियाँ

### रक्षात्मक व्यवस्था

रक्षात्मक संवैधानिक प्रावधान जनजातीय समाज को अन्य समाजों की अपेक्षा विशेष सुरक्षा प्रदान करते हैं ये निम्न हैं :–

- अनुच्छेद 15 में अनुसूचित जनजातियों के साथ किसी भी प्रकार के भेदभावों को वर्जित किया गया है। इसी के खण्ड 4 के अन्तर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विशेष नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान है।
- अनुच्छेद 16 में राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सबंधित सभी नागरिकों के लिए अवसर की समानता का प्रावधान किया गया है।
- अनुच्छेद 23 के द्वारा बेगार प्रथा तथा बालश्रम को प्रतिबन्धित किया गया है। बाद में संसद द्वारा 1976 में कानून बनाकर बंधुआ मजदूरी को प्रतिबंधित कर दिया गया है।
- अनुच्छेद 29 आदिवासी समुदाय को अपनी भाषा, बोली तथा संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 46 आदिवासियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा हेतु राज्य से विशेष व्यवस्था का आग्रह करता है।
- अनुच्छेद 164 बिहार, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ तथा मध्यप्रदेश राज्यों में आदिवासियों के हितों तथा कल्याण की देखरेख के लिए एक जनजातीय कल्याण मंत्री की नियुक्ति का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 275 को आधार बनाकर केन्द्र सरकार राज्यों को जनजातीय कल्याण एवं विकास कार्यों के क्रियान्वयन हेतु विशेष धनराशि प्रदान करती है।
- अनुच्छेद 330, 332 तथा 334 के द्वारा लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं।
- अनुच्छेद 335 के द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए शासकीय सेवा में 7.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित किए गए। इसके साथ–साथ आयु सीमा में छूट, अर्हता मानदंड में छूट, पदोन्नति में छूट तथा अन्य तकनीकी स्तरों पर छूट के प्रावधान किए गए।
- अनुच्छेद 338 में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के कल्याण हेतु राष्ट्रपति द्वारा आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है। जिसका दायित्व संविधान द्वारा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को प्रदत्त सुविधाओं का मूल्यांकन करना, जनजातीय लोगों और राज्य सरकारों से सम्पर्क बनाए रखना, उनके कार्यक्रमों की जाँच करना तथा योजनाओं के लिए मार्गदर्शन देना आदि प्रमुख कार्य है। यह आयुक्त प्रतिवर्ष राष्ट्रपति को अपना प्रतिवेदन भेजता है जिसमें अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन तथा अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के सम्बन्ध में उपलब्धियों एवं कमियों को वर्णित किया जाता है।
- अनुच्छेद 339 संघ सरकार को अधिसूचित क्षेत्रों में निवास करने वाले आदिवासियों को प्रशासन का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 340 जनजातियों को सरकारी शिक्षण संस्थानों में नामांकन तथा अध्ययन के लिए आरक्षण का उपबंध करता है।
- अनुच्छेद 342 के माध्यम से राष्ट्रपति जनजातियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्रदान करता है (बसु, डी.डी. 2013: 108–122)।

### पृथक प्रशासनिक व्यवस्था

जनजातीय समुदाय शेष समाज से कटा हुआ तथा सदियों से पिछड़ा है, साथ ही इस समुदाय की अपनी पृथक संस्कृति, परम्परा एवं भिन्न पहचान रही है। इसी कारण भारतीय संविधान में जनजातियों के लिए शेष समाज से भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधान संविधान की पाँचवीं एवं छठीं अनुसूची में किया गया है।

### (अ) अनुसूचित क्षेत्रः

संविधान के अनुच्छेद 244 तथा 244(1) में अनुसूचित क्षेत्रों तथा जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन का प्रावधान है। संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अनुसार भारत का राष्ट्रपति किसी भी राज्य का कोई क्षेत्र 'अनुसूचित क्षेत्र' घोषित कर सकता है। 1977 से अब तक दो राष्ट्रपतियों ने अनुसूचित क्षेत्र घोषित किए हैं। ये क्षेत्र निम्न नौ राज्यों में हैं–आन्ध्रप्रदेश, झारखण्ड, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान और छत्तीसगढ़। इन अनुसूचित क्षेत्रों के गठन के पीछे मुख्यतः दो उद्देश्य रहे हैं। पहला लघु प्रक्रिया तथा बिना बाधा के जनजातियों की सहायता करना तथा दूसरा अनुसूचित क्षेत्रों को विकास के पथ पर लाना एवं जनजातियों के हितों की रक्षा करना।

गौरतलब है कि घोषित अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्य के राज्यपाल को विशेष और व्यापक अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्यपाल ही यह तय करता है कि संसद या विधान मण्डलों द्वारा पारित कानून इन क्षेत्रों में लागू होंगे या नहीं। राज्यपाल इन क्षेत्रों में शान्ति बनाए रखने एवं प्रशासन के भली–भाँति संचालन के लिए नियम भी बना सकते हैं। जैसे भूमि हस्तांतरण को रोकना, भूमि आवंटन को नियन्त्रित करना, साहूकारों एवं व्यापारियों की गतिविधियों को रोकना आदि।

पाँचवीं अनुसूची के खण्ड 4 में अनुसूचित क्षेत्र वाले प्रत्येक राज्यों में जनजातीय सलाहकार समिति के गठन का प्रावधान है। राष्ट्रपति के निर्देश पर अन्य राज्यों में भी, जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं हैं, जनजातीय सलाहकार समिति के गठन का प्रावधान है। तमिलनाडु तथा पश्चिम बंगाल ऐसे ही दो राज्य हैं जहाँ अनुसूचित क्षेत्र नहीं होने के बावजूद वहाँ जनजातीय सलाहकार समिति गठित है। जनजातीय सलाहकार समिति में अधिक से अधिक 20 सदस्य होने चाहिए। इस समिति को जनजातीय कल्याण तथा प्रगति के सम्बन्ध में राज्यपाल को सलाह देने का पूर्ण अधिकार है।

पाँचवीं अनुसूची के खण्ड तीन में यह प्रावधान है कि राज्यपाल जनजातीय सलाहकार समिति की गतिविधियों से सम्बन्धित प्रतिवेदन राष्ट्रपति के पास भेजता है।

### (ब) जनजातीय क्षेत्रः

जनजातीय क्षेत्र एक अर्थ में तो अनुसूचित क्षेत्र है किन्तु संवैधानिक भाषा में जनजातीय क्षेत्र वे हैं जो संविधान की छठी अनुसूची में उल्लेखित किए गए हैं। ये क्षेत्र हैं असम, मेघालय, मिजोरम तथा त्रिपुरा। इन राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन हेतु स्वायत्त जिला एवं क्षेत्रीय परिषदों का गठन किया जाता है। प्रत्येक स्वायत्त जिले के प्रशासन के लिए एक–एक जिला परिषद की स्थापना की जाती है। जिला परिषद् के सदस्यों की संख्या अधिक से अधिक 30 होती है जिसमें से चार को राज्यपाल मनोनीत करता है। शेष सदस्यों का चयन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। राज्यपाल चाहे तो वह सभी चुनाव क्षेत्रों को जनजातियों के लिए आरक्षित कर गैर–जनजातीय समाज को चुनावी प्रतिनिधि पद से वंचित कर सकता है (सिसोदिया, 2001: 100–112)।

### विकासात्मक गतिविधियाँ

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में आर्थिक एवं सामाजिक विकास में गति लाने के लिए प्रशासन की ओर से वृहद् उद्देश्य एवं समयपरक कल्याणकारी योजनाएँ, पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से लागू की गई। इन पंचवर्षीय योजनाओं में जनजातियों के कल्याणार्थ समुचित धनराशि की व्यवस्था की गई। 1951 से 2017 तक देश में 12 पंचवर्षीय तथा पाँच वार्षिक योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं। इन पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत राष्ट्रीय सन्दर्भ में महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्यक्रम एवं नीतिगत परिवर्तन किए गए, जिनके माध्यम से जनजातीय विकास के लिए अनेक कार्य किये गये।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय सन्दर्भ में इन 68 वर्षों में जनजातीय विकास के लिए जो महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक कदम उठाए गए उनमें–1956 में जनजातीय विकास प्रक्रिया के पाँच मार्गदर्शी सिद्धान्त–पंचशील को अपनाना, 1958 में बहुउद्देश्यीय जनजातीय विकासखण्ड, 1961 में आदिवासी विकासखण्ड, 1969 में जनजातीय विकास अभिकरण, 1974 में आदिवासी उपयोजना, 1987 में ट्रायफेड (आदिवासी सहकारी विपणन विकास महासंघ) का गठन, 1993 में 73वाँ संविधान संशोधन, 1996 में पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम, 1999 में पृथक जनजातीय कार्य मन्त्रालय का गठन, 2001 में राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति वित्त एवं विकास निगम की स्थापना, 2004 में पृथक अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना तथा वन अधिनियम, 2006 प्रमुख है। इन प्रावधानों के अतिरिक्त प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में जनजातीय विकास के लिए कई सामुदायिक एवं व्यक्तिगत लाभ की योजनाएँ भी संचालित की गयी।

विकासात्मक गतिविधियों के साथ–साथ मूल्यांकन एवं समीक्षा, विकास प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। इस हेतु समय–समय पर भारत सरकार द्वारा जनजातीय समस्याओं, प्रशासन तथा विकासात्मक गतिविधियों की समीक्षा हेतु कई समितियों का गठन भी किया गया है। इन समितियों में प्रमुख है–रेणुका राय समिति (1959), वेरियर एल्विन समिति (1960), यू. एन. ढेबर समिति (1961), षीलू आओं समिति (1966–1969), बाबा समिति (1971), एम.सी. समिति (1972), अप्पू समिति (1971) एवं दिलीपसिंह भूरिया समिति (1995)। इनके अलावा भी जनजातीय क्षेत्रों में प्रषासनिक सुधारों हेतु राज्य स्तरीय समितियॉ गठित की गई।

### संदर्भ


1. भट्ट, आशीष (2002): लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण एवं उभरता जनजातीय नेतृत्व, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर पृ. 178–186।
2. बसु, दर्गा दास (2013): भारत का संविधानः एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस, गुडगॉव हरियाणा पृ. 108–115।
3. द्विवेदी, राधेश्याम (2007): मध्यप्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम, सुविधा लॉ हाउस प्रा. लि. भोपाल।
4. गुप्ता, मंजू (2003): जनजातियों का सामाजिक, आर्थिक उत्थान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली पृ. 1–4।
5. खेत्रपाल, बी सी (2010): मध्यप्रदेश पंचायत राज एवं ग्राम स्वराज अधिनियम 1993, खेत्रपाल पब्लिकेशन्स, इन्दौर।
6. मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातीयॉ (संशोधन 2000), मध्यप्रदेश आदिम जाति कल्याण विभाग, भोपाल।
7. मैकलेण्ड, जे एम (1967): मासा मीडिया एण्ड रूरल डेवलपमेंट, पेपर प्रेसेन्टेड एट द एसोसिएशन फॉर एज्यूकेशन इन जर्नलिज्म, बोल्डर पृ. 78–80।

8. मेहता, प्रकाश चन्द्र (1994): वालेन्टरी आर्गेनाइजेषन एण्ड ट्राइबल डेवलपमेंट, शिवा पब्लिकेशर्स उदयपुर, पृ. 54–55।
9. मिश्रा, राजीव (2008): वालेन्टरी सेक्टर एण्ड रूरल डेवलपमेंट, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर पृ. 50–60।
10. पालीवाल, एस एल (2000): जनजाति विकास के पंचशील सिद्धात, ट्राइब वर्ष 35 अंक 3–5 पृ. 1–9।
11. पालोत, आर सी (1987): राजस्थान की वनविहारी जनजातियॉ, नीलकमल ब्रदर्स, डूंगरपुर पृ. 1।
12. प्राथमिक जनगणना सार 2011 खण्ड़ 2 जनगणना कार्य निदेशालय, मध्यप्रदेश।
13. रामप्यारे, (1991): हरिजन युवकों राजनीतिक समाजीकरण, मितल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ. 85–86।
14. सिंह, बी पी (2004): म.प्र. की गोंड़ जनजाति का सांस्कृतिक परिदृश्य, बुलेटिन सयुक्ता 41, आदिम जाति शोध संस्थान, भोपाल पृ. 6–14।
15. सिंह, बी पी (2004): म.प्र. की गोंड जनजाति का सांस्कृतिक परिदृश्य, बुलेटिन सयुक्ता 41, आदिम जाति शोध संस्थान, भोपाल पृ. 6–16।
16. सिसोदिया, यतीन्द्रसिंह एव भट्ट, आषीष (2011): मध्यप्रदेश में पंचायत राज व्यवस्थाः विविध आयाम, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 34।
17. सिसोदिया, यतीन्द्रसिंह (2001): मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 100–112।
18. त्रिपाठी, गोपाल (1973): भारत की जनजातियों का एकीकरण, वन्यजाति पृ. 8–13।
19. तिवारी, शिवकुमार (2000): मध्यप्रदेश की जनजातियॉ, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 200।
20. राकेश, भट्ट (1995): जनजातीय उद्यमिता का विकास, हिमांशु पब्लिकेशन्स, जयपुर पृ. 8–13।
21. उपाध्याय, विजय शंकर एवं गया, पाण्डेय (2002): जनजातीय विकास, मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. 2–4।
22. उपाध्याय, विजय शंकर एवं गया, पाण्डेय (2003): ट्रायबल डेवलपमेन्ट इन इंडियाः ए क्रिटिकल अप्राजल, काउन पब्लिकेशन्स राची पृ. 193।
23. वैद्य, नरेश कुमार (2003): जनजातीय विकासः मिथक एवं यथार्थ, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर पृ. 7–16।